शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
Vol. 9, Issue 3, pp (23-31), Month: Sep. 2018

आर्थिक सुधार में भारतीय बैंकिंग का योगदान

डॉ0 मो0 सनउवर अली,
असि0 प्रो0, वाणिज्य संकाय,
रामदयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत
Email: sanauarali@gmail.com

सारांश

बचत करने की परम्परा दुनिया की विभिन्न संस्कृतियों में हमेशा से रही है। मुद्रा हो या सोने की मुहरे बर्तनों में इकट्ठी करने और उन्हें जमीन के भीतर दबा कर रखने का काम प्राचीन में पूरी दुनिया में किया गया है। साम्राज्य में कर के एकत्र के रूप में एकत्र किये गये या अपने अधीन जागीरदारों या राज्यों से शुल्क के रूप में वसूले गये धन को राजकोष में रखा जाता था।

आधुनिक बैंकिग के अविष्कार के साथ ही धन घरों से बैंकों में पहुंच गया लोग अपने धन और आभूषणों को बैंकों में जमा करना अपने घरों में रखने जाने से अधिक सूरक्षित समझने लगें। क्योंकि वहां उनकी सम्पतियों की सुरक्षा हेतु अलग कमरे एवं अनेको सुविधायें होते है। और बैंको में जमा धन पर ब्याज भी दिया जाता है जिससे लोगों को अतिरिक्त आय भी होने लगी। जैसे सोने पे सुहागा होना। भारत में बैंकिग व्यवस्था छोटे, निजी वाणिज्यिक बैंकों से शुरू हुई लेकिन जब उनमें से कुछ नाकाम होने लगे या उनमें जमा राशि बैंकरों द्वारा चुपके से निकाली जाने लगी और ग्राहकों की जमा की गयी मेहनत की कमायी डूब गयी तो सरकार हरकत में आयी और उसने बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। 1991 से पहले भारत बड़े पैमाने पर बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर रहा था। सरकार ने 1969 में 50 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया था। इसके जरिये उसने 80 फसीदी से ज्यादा बैंक शाखाओं पर नियंत्रण हासिल कर लिया था। सरकार ने 1980 में कई और बैंकों को अपने नियंत्रण मे लिया और देश भर में 2.00 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। भारतीय बैंक का सकल एनपीए यानि बुरे कर्ज तीस सितंबर 2017 तक 8.40 लाख करोड़ रुपये हो गया। जो दिखाता है कि 30 जून 2017 के 8.29 लाख करोड़ रुपये के मुकाबले इसमें 1.31 फीसदी की वृद्धि हुई है। सितंबर 2015 से एनपीए में तेजी से उछाल का कारण कथित रूप से वर्ष 2008 से पूर्ववर्ती वर्षो के दौरान बैंको के क्रेडिट ग्रोथ में तेजी है।

मुख्य शब्द *– बैंकिग क्षेत्र की प्रतिक्रिया, भारतीय अर्थव्यवस्था एवं सुधार, दिवालिया कानून।*

प्रास्तावना

भारत में बैंकिग व्यवस्था छोटे, निजी वाणिज्यिक बैंकों से शुरू हुई लेकिन जब उनमें से कुछ नाकाम होने लगे या उनमें जमा राशि बैंकरों द्वारा चुपके से निकाली जाने लगी और ग्राहकों की जमा की गयी मेहनत की कमायी डूब गयी तो सरकार हरकत में आयी और उसने

बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इस बड़े सुधार से यह सुनिश्चित हो गया कि बैंक को होने वाले किसी भी घाटे का ग्राहकों पर असर नहीं पड़ेगा या बैंक ग्राहकों की रकम का दुरूपयोग नहीं कर पाएंगे। उसके बाद के वर्षो में धीरे–धीरे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के नियमन के लिए अन्य व्यवस्थाएं बनायी गयी। बैंकिग क्षेत्र पर नरसिम्हन समिति की सिफारिशें इस दिशा में एक और प्रमुख सोपान साबित हुई। उसके बाद बैंकिंग क्षेत्र. की क्षमता एवं प्रशासन सुधारेन के उद्देश्य से एक के बाद एक कई सुधार किये गये।

भारत में बैंकों के सुधार का इतिहास

1991 से पहले भारत बड़े पैमाने पर बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर रहा था। सरकार ने 1969 में 50 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया था। इसके जरिये उसने 80 फसीदी से ज्यादा बैंक शाखाओं पर नियंत्रण हासिल कर लिया था। सरकार ने 1980 में कई और बैंकों को अपने नियंत्रण मे लिया और देश भर में 2.00 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इस तरह से तकरीबन 90 फीसदी बैंकों का नियंत्रण सरकार के पास हो गया और लंबे समय तक यह मामला बना रहा।

ऐसे कई सुधारों को 1991 से लागू किया गया, जिससे देश के बैंकिग सेक्टर के प्रदर्शन और ताकत में सुधार हुआ। मिसाल के तौर पर बैंकिग सिस्टम के उधारी की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में हिस्सेदारी 1990 में 51.5 फीसदी थी तो 2000 में बढ़कर 53.4 फीसदी हो गई। हालाकि बाकी देशों में यह जीडीपी अनुपात और उधारी के अनुपात का मामला काफी ज्यादा था। साल 2000 में चीन में यह अनुपात 133 फीसदी, मलेशिया में 143 फीसदी और थाईलैड में 122 फीसदी था।

सुधारों पर बैंकिग क्षेत्र की प्रतिक्रिया

इस विषय पर चर्चा प्रारंभ करने से पहले इसकी संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना भी अनिवार्य हो जाता है। 1969 व 1980 में बैंकों ने 1991 की अवधि के बाद दूरगामी सुधारों के अगले चरण को देखा था। क्रेडिट प्रक्रियाओं और ब्याज दर संरचनाओं का अविनियमन, पूर्व–छूटों में क्रमिक कटौती, सीबीएस में प्रवेश और नये युग की निजी क्षेत्र की बैंकिग प्रणाली के लाइसेंसिंग ने 21वीं सदी के दशको में बैंकिग सेवाओं के तीव्र विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया और यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वित्त वर्ष 1997 में बैंकों में जमा राशि का सकल घरेलू उत्पादन में प्रतिशत 35.6 की तुलना में बढ़कर वित्त वर्ष 2007 में 60.8 प्रतिशत हो गया है। जबकि ऋण की प्रतिशतता वित्त वर्ष 1997 में सकल घरेलू उत्पाद के 19.6 प्रतिशत की तुलना में वित वर्ष 2007 में बढ़कर दोगुने से भी अधिक हो गयी है। निजी क्षेत्र के बैंकों की जमा राशि का प्रतिशत वित वर्ष 2007 में 20 प्रतिशत की तुलना में वित्त वर्ष 2017 में बढ़कर 24 प्रतिशत हो गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको के लिए हाल ही में घोषित 2.11 लाख करोड़ रुपये मूल्य से बड़े पैमाने पर पुनर्पूंजीकरण योजना संभावित रूप परिवर्तक हो सकती है। हालांकि यह सही समय में लिया गया निर्णय है और इससे यह सुनिश्चित होगा कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक बेसल

3 नियामक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे, इसमें बैंकों के लिए विकास पूंजी के लिए स्थान भी शामिल है जो बेहतर आंकड़े प्रदर्शित करने में सक्षम है। मेरी राय में यह सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के बीच प्रभावी तरीका है जो अंततः समग्र अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचाएगा।

अगली पीढ़ी की बैंकिंग

वर्ष 2025 तक भारत दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की उम्मीद के साथ निम्न 4 कारक बैंकिंग परिदृश्य को निर्धारित करेगें :–

विकास : इसमें सरकार का वित्तीय समावेशन एजेंडा और अन्य प्रमुख क्षेत्रीय और संरचनात्मक सुधार शामिल हैं।

अविनियमन : वित्तीय मध्यस्थता और बचत प्रवृत्ति में नीतिगत सुधार।

जनसांख्यिकी : युवा और डिजिटल रूप से सुसज्जित आबादी का प्रभुत्व।

विघटन : इसमें डिजिटलीकरण और बैंकिंग तथा दूरसंचार का एकीकरण शामिल है।

इन 4 कारकों के आधार पर निम्नलिखित सात रुझान भारत में अगली पीढ़ी की बैंकिंग को परिभाषित करेगें।

प्रौद्योगिकी से बदलेगें बैंक

भविष्य में प्रौद्योगिकी बैंकिग रूपरेखा को परिभाषित करेगी। इसमें क्लाउड कंप्यूटिंग, स्मार्ट फोन और ऐसे अन्य नवाचार शामिल होंगे। ग्राहकों को बैंको के साथ संवाद करने का तरीका पूर्णतः बदल जाएगा। उदाहरण के लिए ग्रहकों के मोबाइल फोन पर विभिन्न ऑफरों की पेशकश, वैयक्तिक संपर्क के लिए होम वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सिस्टम का उपयोग, प्रभावी बिक्री के लिए फेस डिटेक्शन प्रौद्योगिकी का उपयोग ऐसे कुछ तरीके हैं जिनके माध्यम से प्रौद्योगिकी भविष्य में बेंकिंग की सहायता करेगी और यह कहने की आवश्यकता नही है कि मोबाइल बैंकिग और मोबइल भुगतान व वाणिज्य वास्तव में भविष्य की बैंकिग है। भारत में मोबाइल की बढ़ती पहुंच को देखते हुए इस प्रौद्योगिकी में वित्तीय सेवाओं की सुपुर्दगी के लिए अपार क्षमता बनी हुई है। भारत में लगभग 94.6 करोड़ से भी अधिक मोबाइल उपयोगकर्ता हैं लेकिन उनमें से केवल 5 करोड़ ही मोबाइल बैंकिग का उपयोग करते हैं। इस संबंध में जैम ट्रिनिटी जनधन–आधार–मोबाइल में बैंकिग का रूप परिवर्तित करने की क्षमता है।

एससीबी के मार्च 2017 तक उद्योगों का स्ट्रेस्ड एडवांस रेशो लगभग 23 फीसदी था जबकि कृषि, सेवा और खुदरा क्षेत्र के लिए यह अनुपात क्रमशः 6.3 फीसदी 7 फीसदी और 2.1 फीसदी था। इसमें एक समूह के रूप में पीएसबी द्वारा उद्योग स्ट्रेस्ड एडवांस रेशो का एडवांस 28.8 फीसदी था। जबकि निजी बैंकों और विदेशी बैको का अनुपात क्रमशः 9.3 फीसदी और 7.1 फीसदी था। उनमें प्राथमिक रूप से बुनियादी धातु और उनके उत्पाद, सीमेंट और उनके उत्पाद, टैक्सटाइल इन्फ्रास्ट्रक्चर आदि इससे प्रभावित हैं।

वर्ष	जीएनपीए अनुपात	क्रेडिट ग्रोथ
2001–02	11	23.6

2002—03	9.5	14.2
2003—04	7.4	16.2
2004—05	5.2	31
2005—06	3.5	31
2006—07	2.6	28.5
2007—08	2.4	23.1
2008—09	2.4	19.6
2009—10	2.5	17.1
2010—11	2.4	22.3
2011—12	2.9	16.9
2012—13	3.4	15.1
2013—14	3.8	10.9
2014—15	4.3	12.6
2015—16	7.6	10.7
2016—17	9.3	5.08

स्रोत : BCBS (Basel Committee on Banking Supervision) www.bis.org

वर्ष 2018 में भारत के कारोबार ने सुगमता सूची में अपनी स्थिति सुधार ली। इस सूची को हर वर्ष विश्व बैंक जारी करता है। भारत ने 30 अंकों की छलांग लगाकर अब 103 वें स्थान पर अपनी जगह बना ली है। हालांकि भातर अब भी निचली पायदान पर खड़ा है, पर पिछले वर्ष की तुलना में उसकी स्थिति बेहतर हुई है। पिछले कई वर्षो से भारतीय अर्थव्यवस्था धीमी गति से बढ़ रही थी। इस सूची में भारत की कदमताल भी धीमी ही थी। 2016 में भारत इस सूची में 136वें स्थान पर था और उससे पिछले वर्ष यानि 2015 में 137वें स्थान पर। अब स्थिति में जो सुधार हुआ है, उसका एक कारण दिवालिया कानून में होने वाले तमाम बदलाव भी हैं।

दिवालिया कानून में बदलाव की पहल 2016 में शुरू हुई, जब सरकार ने दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड आईबीबीआई जैसे रेगुलेटर के साथ दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता आईबीसी को लागू किया हालांकि व्यक्तियों और पार्टनरशिप कंपनियों के लिए इस संहिता के प्रावधानों को अभी अधिसूचित नही किया गया है। चूंकि इस संबंध में फिलहाल नियम जारी नही किये गये हैं। कोई व्यक्ति या कंपनी दिवालिया तब होते हैं जब वे अपने द्वारा लिये गये ऋण को चुकाने में असमर्थ होते हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए कर्ज को पुनर्गठित किया जाता है। फिर भी अगर कर्ज का निपटारा नहीं होता तो व्यक्ति के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। अगर मामला किसी कंपनी का होता है तो कर्ज के पुनर्गठन का विकल्प तलाशने के बाद दूसरा विकल्प यह होता है कि ऋणदाताओं को भुगतान करने के लिए परिसंपतियों को बेच दिया जाए।

इस अधिनियम के लागू होने से पहले दिवालिया समाधान प्रक्रिया में लंबा समय लग जाता था। मुकदमेबाजी में भी समय बर्बाद होता था। इसका एक कारण कानूनों की जटिलता थी। दिवालिया समाधान के लिए हमारे देश में लगभग 12 कानून हैं। जैसे संविदा अधिनियम, बैंकों और वित्तीय संस्थानों में बकाया ऋणों और वितीय संस्थानों बकाया ऋण की वसूली अधिनियम, वितीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एंव पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम इत्यादि। इस कारण अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो रहे थे। साथ ही बीमार औद्योगिक कंपनिया विशेष प्रावधन अधिनियम और कंपनी अधिनियम 1956 के प्रावधान भी प्रभावहीन थे।

दिवालिया संहिता में दो अधिकरणों को स्थापना की गयी है – राष्ट्रीय कंपनी कानून अधिकरण एनसीएलटी और ऋण वसूली अधिकरण डीआरटी राष्ट्रीय कंपनी कानून अधिकरण के क्षेत्राधिकार में कंपनियां और लिमिटेड लायबिलिटी पार्टनरशिप आएंगी और ऋण वसूली अधिकरण के अधिकार क्षेत्र में व्यक्ति और पार्टनशिप कंपनिया आएंगी।

भारतीय अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक सुधार

भारत में आर्थिक सुधार का प्रारंभ वर्ष 1991 में नवीन औद्योगिक नीति के माध्यम से किया गया। उस समय जो भी संरचनात्मक सुधार लागू किये गये वे कहीं न कहीं अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष आईएमएफ की शर्तो के कारण भारत द्वारा अपनाये गये और उनका उददेश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को संकट से निकालना था। मुख्य रूप से उन सुधारों को वैश्वीकरण निजीकरण एवं उदारीकरण के रूप में जाना जाता है। इन सुधारों के लगभग 7 वर्ष बाद वर्ष 1998 में भातर एक बार फिर राजकोषीय एवं चालू खाते के भारी घाटों के साथ वैश्विक बाजार में अपनी कम होती साख एवं ढांचागत शिथिलता के कारण उस अवस्था में पहुंच गया जहां उसे आर्थिक सुधारों की दूसरी बड़ी खुराक की जरूरत महसूस हुई। तत्कालीन सरकार ने महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों एंव सुधारों को लागू किया और उसे दूसरी पीढ़ी के सुधारों का नाम दिया। जिसका निहितार्थ यह था कि 1991 में शुरू किये गये सुधार पहली पीढ़ी के आर्थिक सुधार थे। इन दोनों ही सुधारों में एक महत्वपूर्ण समानता यह थी कि वे संकटग्रस्त अर्थव्यवस्था को सामान्य एवं विकासशील स्थिति में लाने के प्रयास थे अर्थात संकट आने के बाद उसे दूर करने का प्रयास किया गया क्योंकि इन संकटों से बचने हेतु कोई उपाय नही किये गये थे।

प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी के आर्थिक सुधारों के मध्य बैंकिंग सुधार

पहली पीढ़ी के आर्थिक सुधार मूलतः संकट से निपटने के लिए आरंभ किये गये थे। इन सुधारों की चर्चा से पहले तत्कालीन संकटों को जानना आवश्यक है : भारतीय अर्थव्यवस्था की दशा की बात करें तो वर्ष 1991 में मुद्रास्फीति की दर 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 16.7 प्रतिशत तक पहुंच गयी, गैर–विकास खर्चो के लगातार बढ़ते रहने से राजकोषीय घाटा इतना बढ़ गया कि वर्ष 1991 में भातर का ब्याज दायित्व कुल सरकारी खर्च के 36.4 प्रतिशत तक पहुंच गया। प्रतिकूल भुगतान संतुलन की ओर देखें तो वर्ष 1980–81 में इसका घाटा 2214 करोड़ रुपये था जो वर्ष 1990–91 में बढ़कर 17367 करोड़ हो गया और इस प्रतिकूलता को कम करने के लिए भारत को विदेशी ऋण का सहारा लेना पड़ा जिससे पुनः ऋण और ब्याज का बोझ बढ़ता गया।

उधर इराक युद्ध के कारण पेट्रोल की कीमतें बढ़ी और खाड़ी देशों से विदेशी मुद्रा का प्रवाह बंद हो गया जिसने समस्या को बद से बद्तर कर दिया विदेशी मुद्रा कोष जो 1986–87 में 8151 करोड़ रुपये था, 1989–90 में घटकर 6252 करोड़ हो गया और 1990–91 में घटकर यह दो सप्ताह के आयात बिल का भुगतान करने हेतु भी अपर्याप्त था।

इसके साथ ही निर्देशित ऋण कार्यक्रमों मुख्यतः प्राथमिकता क्षेत्र वाले ऋण जिनमें कृषि और लघु उद्योगों का ऋण शामिल हैं के बोझ को कम करने, ब्याज दर को बाजार शक्तियों–मांग और आपूर्ति पर छोड़ने, बढ़ते हुए गैर निष्पादनीय संपत्तियों से निपटने के लिए संपत्ति पुनर्निर्माण कोष की स्थापना करने बैंकों पर रिजर्व बैंक और भारत सरकार के वित्त मंत्रालय–बैंकिंग प्रकोष्ठ के दोहरे नियंत्रण के स्थान पर उन्हें सिर्फ रिजर्व बैंक के नियंत्रण में सौंपने और बैंकों को स्वायतता प्रदान करने की सिफारिश की।

बैंकिंग सुधार समग्र रूप में

यदि वर्ष 1991 से आज तक बैंकिग क्षेत्र में सुधारों की संरचना को देखें तो तीन महत्वपूर्ण पॉलिसी दस्तावेज सामने आते हैं। जो क्रमशः 2008 एवं रघुराम राजन समिति 2009 हैं। य़द्यपि इन समितियों के समस्त सुझावों एवं विचारों का अक्षरक्षः लागू नहीं किया गया किन्तु इन तीनों ने भारतीय बैंकिग व्यवस्था के ढांचागत सुधार में अपनी महती भूमिका अदा की है।

भातीय मुद्रा बाजार में जब भी बैंकिग सुधारों की बात आती है तो उसके पर्यायवाची के तौर पर बासेल 1, 2 एवं 3 नियमों और नरसिंघतम कमिटी की संस्तुष्टियों की चर्चा अवश्य होती है। वर्तमान में वांछित बैंकिंग सुधारों से पहले एक दृष्टि डालते हैं। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में अब तक हुए सुधारों पर।

बैंकिग सुधारों की दिशा में नया अध्याय

बासेल 3 मूलतः बैंकिग नियामकों द्वारा बैंगिंक प्रणाली के उन पक्षों को परिमार्जित करने का प्रयास है जिनके कारण संपूर्ण विश्व को वैश्विक आर्थिक संकट या मंदी का सामना करना पड़ा। चूंकि विकसित अर्थव्यवस्थाओं को वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा एवं उसे बचाने हेतु एक बड़ी धनराशि खर्च करनी पड़ी है। अतः ये देश नहीं चाहते कि भविष्य में इनकी पुनरावृत्ति हो। परिणामस्वरूप बैंकिंग व्यवस्था को कुछ इस प्रकार से नियंत्रित करना होगा जिससे कि न सिर्फ आस्तियों में गुणात्मक सुधार हो बल्कि बैंकों की हानि सहन करने की क्षमता में भी यथोचित वृद्धि हो। बासेल 3 के अंतर्गत इस प्रकार के प्रावधान किये गये हैं कि पूंजी पर्याप्तता अनुपात की गणना में सभी प्रकार के जोखिमों यथा क्रेडिट, बाजार और परिचालनात्मक का समावेश हो।

बासेल 3 जिन प्रमुख उददेश्यों के साथ लागू किया जाना है, वे है :

1. बैंकिंग क्षेत्र की क्षमता में इस प्रकार अभिवृद्धि करना जिससे कि यह वित्तीय एवं आर्थिक तनावों से उत्पन्न झटकों को सहन कर सके।

2. जोखिम प्रबंधन एवं शासन में सुधार।

3. बैंकों की पारदर्शिता एवं प्रकटीकरण को मजबूत बनाना।

बासेल 3 नियम, बासेल 2 की तुलना में निम्न रूप से बेहतर है :

1. यह पूंजी के स्तर एवं गुणवता में अभिवृद्धि करेगा।
2. तरलता मानकों का आरम्भ।
3. प्रावधान सम्बन्धी नियमों में संशोधन
4. पहले से बेहतर और व्यापक प्रकटीकरण।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अक्टूबर 2017 के अनुसार भारत को अपनी विकास दर को बढ़ाने हेतु प्राथमिकता के क्रम में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में संरचनात्मक सुधार करना होगा। इसी के साथ श्रम एवं उत्पाद बाजारों की दक्षता में अभिवृद्धि और कृषि क्षेत्र को आधुनिकीकृत करना होगा। प्राथमिकता के इस क्रम में आईएमएफ द्वारा बैंकिग सुधारों को प्रथम स्थान देना इस बात की ओर इंगित करता है कि भारतीय बैंकिंग व्यवस्था विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधारों की जरूरत है।

बैंकिंग और कृषि क्षेत्र के संबंध का इतिहास

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार क्षेत्र है। स्वतंत्राता के बाद की भारत की जो तस्वीर थी। उसमें शहरीकरण और औद्योगिक गतिविधियों की दर निम्न थी। साठ के दशक में ग्रामीण अंचल में ऋण या साख की उपलब्धता का सर्वक्षण किया गया इसे ग्रामीण साख सर्वेक्षण कहा गया। सर्वेक्षण की 1964 में प्रापत रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में संगठित क्षेत्रों की कमी थी जिस कारण महाजनों द्वारा दिए जाने वाले ऋण पर निर्भरता थी जिसकी ब्याज दर उंची थी। इसलिए यहां निवेश का स्तर कम था निवेश कम रहने के कारण संवृद्धि दर प्रभावित होकर कम रह जाती थी। इसी सर्वेक्षण के आधार पर 1967 में रिजर्व बैंक के गवर्नर एलके झा ने सामाजिक बैंकिंग अपनाने की अवधारणा का सुझाव दिया। अर्थात किसी बैंक का इस प्रकार से प्रबंधन कि इस के कारोबारी हित एवं व्यापक सामाजिक हित के उददेश्य में समन्वय स्थापित हो।

आधुनिक बैंकिग का दौर

वर्तमान में जिस तरीके से बैंकिंग व्यवहार और उपभोक्ताओं की जरूरतों में परिवर्तन आ रहे हैं वैसी स्थिति में बैंकों का भविष्य भी संकट के घेरे में है। आज तो यह भी माना जा रहा है कि परंपरागत बैंकिंग का दौर खत्म हो चुका है और बैंक लेस बैंकिग की अवधारणा भी प्रबल हुई है। इस संबंध में माइक्रोसॉफ्ट अध्यक्ष बिल गेट्स ने 1994 में कहा था कि बैंकिंग आवश्यक है लेकिन बैंक नहीं। आज 23 वर्षो के बाद क्या उनकी भविष्यवाणी या पूर्वानुमान सही साबित हुआ है? हम ऐसे दोराहे पर खड़े हैं जहां क्रांतिकारी परिवर्तन हमारे सामने है। ऐसा इसलिए है कि किसी भी क्षेत्र में बदलती हुई प्रवृत्ति को देख पाने में हमें समय लगता है और जब तक कि हम उसे देखें, उभरते पैटर्न बड़ी आसानी से गायब हो जाते है। जिसका खामियाजा सभी हितधारकों को भुगताना पड़ता है।

नई विनियामकीय अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए बैंक बहुत अधिका निवेश कर रहे है तथा भर्ती भी कर रहे हैं। एक अन्य उपशाखा भी जिसमें विनियमों को कठोरता से लागू किया

जा रहा है। वह है गैर बैंकिग वितीय संस्थाओं के बढ़तें कारोबार का क्षेत्र एंव उनमें होने वाली वृद्धि।

शैडो आभासी बैंक पर विनियमन की उतनी सख्ती से नहीं लागू किया जाता है वे बैंक के ग्राहकों को स्पर्धी सेवाएं दे रहे हैं।

नगद लेन–देन की पृष्ठभूमि

बैंकिग का मुख्य काम धन का लेन–देन है। धन का लेन–देन यानि ऋण लेना और ऋण देना। ऋण की बात करें तो हमें तुरंत सूदखोर कहे जाने वाले साहूकारों और महाजनों की याद आती है। साहूकार और महाजन यानि आधुनिक बैंकिग से परे धन के लेन–देन की एक व्यवस्था। यदि हम इसमें से शोषण के मामले को हटाकर और केवल इसे एक व्यवस्था के तोर पर देखें तो हम पाएंगे कि पूरे भारतवर्ष में बैंकिग की यह एक शानदार व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था के मूल सिद्धांतों का प्रारंभ वेदों से ही हो जाता है। वेदों में ब्याज पर ऋण देन–लेन की व्यवस्था की कुसीद कहा है। यही शब्दावली बाद के वैदिक वांग्मय में भी प्रयोग की गयी है।

1. सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण साहूकार या महाजन थे।
2. उससे उपर बड़े सेठ तथा नगर सेठ हुआ करते थे। कुछेक स्थानों पर ये सेठ जमींदार भी बन गए थे।
3. सबसे उपर जगह सेठ बने। हालांकि यह शब्दावली मुगल काल में विकसित हुई परंतु यदि हम शब्द को छोड़कर भाव पर ध्यान दें तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापारियों को धन देने वाले सेठ भी पूरे देश में पाये जाते थे।

निष्कर्ष

निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के उन्हीं बैंकों को बैंकिंग सुधारों का लाभ मिल सकेगा जो इन बदलावों का प्रभावी रूप से लाभ उठाने योग्य होंगे। इन पूर्वानुमानित बदलावों को संपूर्ण रूप से अपना कर न सिर्फ भारतीय बैंकों को वैश्विक श्रेणी का बनाया जा सकता है बल्कि उनके द्वारा अगले पांच वर्षो में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व में शीर्ष चार अर्थव्यवस्थाओं में भी स्थान मिल सकता है।

उपरोक्त तथ्यों एवं उनके विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान सरकार के महत्वाकांक्षी तीसरी पीढ़ी के आर्थिक सुधारों की राह में भारतीय बैंकिग व्यवस्था विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि भारतीय बैंकिग व्यवस्था ने अपने कठोर नियमों एवं उसके प्रभावी अनुपालन के कारण वैश्विक स्तर पर अपनी एक अलग पहचान बनायी है, किन्तु इस पहचान को स्थायी रखने के लिए पूंजीगत सहायता के साथ ही साथ बैंकिंग नियामक एवं सरकार को ऐसे प्रभावी कदम भी उठाने होंगे जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की लगातार बढ़ रही गैर–निष्पादनीय परिसंपत्तियों से न सिर्फ निपटा जा सके बल्कि भविष्य में इनकी पुनरावृति न हो, ऐसा सुनिश्चित किया जा सकें। अच्छा तो यह होगा कि बैंक सुधारों के आधुनिक युग में हम फिर से परंपरागत भारतीय बैंकिंग प्रणाली में भी

पीड़ित को न्याय दिलाने की व्यवस्था करें। कागजों के बिना मौखिक आर्थिक व्यवहारों में होने वाली गड़बड़ियों को पकड़ने में राज्य को अपना सामर्थ्य बढ़ाना चाहिए, तभी यह संभव है।

संदर्भ

1. बोधायन गृह्यसूत्र 4/4/9

2. मनु 1/90

3. संस्कारविधि पृष्ठ 176

4. 1998, बैंकिग सेक्टर में सुधार पर कमेटी की रिपोर्ट। भारत सरकार।

5. 2009 ए हंड्रेड स्मॉल स्टेप्स : कमेटी रिपोर्ट ऑन फाइनेंशियल सेक्टर रिफॉम, सेज पब्लिकेशन

6. फाइनेंस फाइनेंशियल सेक्टर पॉलिसी और लॉन्ग रन ग्रोथ। एम स्पेन्स ग्रोथ कमीशन बैंकग्राउंड पेपर 11, वर्ल्ड बैंक, वॉशिंगटन डीसी।

7. इंटरनेशनल फाइनेंशियल स्टैटिस्टिक्स, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ)

8- Financial Stability Report, June 2017 released on June 30th, 2017, Reserve Bank of India (www.rbi.org)

9- Indian Economy 2016, 2017